ओ३म्

ऋगादि-भाष्य-भूमिके-न्दूपरागे

द्वितीयोंशः

बरेली निवासिमहन्तब्रह्मकुण्डोदासीनरचितगौरि-

भाष्यभूमिकेन्दूत्तरभूतः ॥

परीक्षितगढनिवासि पं० तुलसीरामस्वामि-विरचितः

प्रयागस्थ

सरस्वतीयन्त्रालये मुद्रितः

संवत् १९५० वि०

प्रथम बार १०००   प्रति पुस्तक ~)॥।

ओ३म्

भूमिका ।

मन्त्रब्राह्मणभेदो यो दयादिस्वामिदर्शितः ।
तमेव साधयाम्यत्र खण्डयित्वा तदुक्तयरीन् ॥

महन्त ब्रह्मकुशल बरेली निवासी जी ने जो स्वामिदया० स० श्री महाराज के विरुद्ध अब तक "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकेन्दु" नामक पुस्तक के दो "अंश" छप वाये हैं जिन में प्रथम "अंश" का उत्तर तो पण्डित देवदत्त जी शास्त्री पुराना कानपुर की वैदिक पाठशाला के मुख्याध्यापक महाशय ने छपवा दिया ॥

द्वितीय "अंश" का उत्तर यह मैं प्रकाशित करता हूं आशा है कि इन दोनों के अवलोकन से आर्य्यसमाज के अप्राध्यसिद्धान्तों में जिन लोगों को महन्त जी के लेख से भ्रम पड़ा हो वह दूर हो जावेगा और महन्त जी भी अपने कपोल मिथ्या आक्षेपों और प्रकरणविरुद्ध अर्थों पर पश्चात्ताप कर के इस द्वारा अपना भी भ्रम दूर करेंगे । इति ॥

परीक्षितगढ़ जि० मेरठ
आश्विन कृ० २ सं० ५०
} तुलसीराम स्वामी

ओ३म्

अथर्ग्वेदादिभाष्यभूमिकेन्दूपरागे द्वितीयोंशः ।

महन्त जी लिखते हैं कि स्वामी दयानन्दसरस्वती जी अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८२ में लिखते हैं कि—

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत् । तमितिहासश्च पुराणश्च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् । इतिहासस्य च वै सपुराणस्य गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ अथर्व कां० १५ प्रपाठक ३० अ० १ मं० ४ ॥

इस मन्त्र में ब्राह्मणग्रन्थों को इतिहासादि नाम से पुकारा है । तात्पर्य्य महन्त जी का यह है कि यदि ब्राह्मणग्रन्थ अनादि नहीं हैं तो स्वामी दयानन्द जी के लेखानुसार ही उन के माने हुये अनादि अथर्व में उन का वर्णन क्यों आया ? ।

उत्तर—इस मन्त्र में इतिहास पुराणादि सामान्य शब्द हैं ब्राह्मणों के विशेष नाम शतपथ गोपथादि नहीं जैसे वेद में साधारण, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि शब्दों के आने से विशेष देवदत्त यज्ञदत्तादि का ग्रहण नहीं हो सकता अथवा कहीं महन्त शब्द के आने से ब्रह्मकुशल जी का ग्रहण नहीं हो सकता जब तक कि संकेत की सूचना न की जावे ।

महन्त जी को चाहिये कि उपरोक्त मन्त्र से पूर्व मन्त्र का अवलोकन करें जिस से ऋगादि वेदों से ब्राह्मणों का भिन्नत्व सिद्ध है यथाः—

१—स उत्तमां दिशमनुव्यचलत् । तमृचश्च सामानि च यजूंषि ब्रह्मचानुव्यचलन् इत्यादि । मं० ३ ॥

जब कि इस पूर्व मन्त्र में (ऋचश्च) ऋग्वेद (सामानि च) सामवेद (यजूंषि) यजुर्वेद (ब्रह्म च) और अथर्ववेद का अनुव्यचलन कह कर अगले मन्त्र में इतिहास पुराणादि का अनुव्यचलन कहा तब ऋगादि वेदों से इतिहासादि संज्ञक साधारण ब्राह्मणों का भिन्नत्व तो स्पष्ट है। यदि ऋग्वेदादि चारों वेदों के अन्त-

र्गत इतिहासादिसंज्ञक ब्राह्मणग्रन्थ भी आ चुके तो इन दो मन्त्रों में से तृतीय मन्त्र में ऋगादि का अनुव्यचलन कह कर फिर चतुर्थ मन्त्र में इतिहासादि का भिन्न ग्रहण क्यों आता? ॥ अतएव स्वामी जी के कथन तथा अथर्ववेद के मन्त्र से ब्राह्मणों की सनातनता ऐसी सिद्ध है जैसी कि-"साध्या ऋषयश्च ये-यजुः" कहने से साधारण ऋषिशब्द की सनातनता सिद्ध है न कि याज्ञवल्क्यादि की और न कि शतपथ गोपथादि की—

२—महन्त जी—यदृचोऽध्यगीषत ताः पय आहुतयो देवानामभवन्यद्यजूंषि घृताहुतयो,यत्सामानि सोमाहुतयो, यदथर्वाङ्गिरसो मध्वाहुतयो, यद्ब्राह्मणानि इतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीर्मेदाहुतयो देवानामभवन्नित्यादि तै०प्र० २ अनु० ९। मं० २॥

महन्त जी का भावार्थ संक्षिप्त, पादबद्ध जो मन्त्र हैं उन का नाम ऋचा है। तिन को ऋषियों ने अध्ययन किया सो दुग्ध के द्रव्य की आहुति देवताओं को हुई और जो यजुर्वेद को अध्ययन किया सो घृत की और जो सामवेद को अध्ययन किया सो सोमरस की और जो अथर्ववेद को अध्ययन किया सो मधु की और जो ब्राह्मण इतिहासादि को अध्ययन किया सो मेद की आहुति हुई अतएव जब तैत्तिरीय में भी ब्राह्मणग्रन्थों का ग्रहण है तौ स्वामीदयानन्द का कथन ठीक नहीं।

उत्तर—वाह! २ महन्त जी यहां तो बदतोव्याघात दोष में आ गये—मैं पूछता हूं कि ब्राह्मणों का ग्रहण तो तैत्तिरीय में आया परन्तु ऋग् यजुः साम अथर्व इन चारों से भिन्न आया तब ऋगादि के अन्तर्गत ब्राह्मण कैसे हुये किन्तु महन्त जी के ही मुख से सत्य २ बात निकल गई कि ऋग् यजुः साम अथर्व का पढ़ना मानों देवतों को दुग्ध द्रव्य, घृत, सोम, मधु (शहद) की आहुति देने के समान है और उन से भिन्न ब्राह्मणादि ग्रन्थों का पढ़ना मेदा (मांस) की आहुतियों के समान है इस से तो ब्राह्मणों का वेद से भिन्नत्व और नीचत्व सिद्ध हुआ—सत्य है कि सत्य को कोई कैसा ही छिपावे कभी न कभी सत्य निकल ही पड़ता है।

३—महन्त जी—अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः। इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानीति श० कां० १४ अ० ५ ब्रा० ४ कं० १०

इस प्रमाण से ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद् श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान, व्याख्यान इन सब को परमेश्वर का श्वास बतलाते हैं। महाशय! यदि श्लोक सूत्रादि सब वेद हैं तो अष्टाध्यायी आदि तथा गोतम न्याय सूत्रादि तथा नास्तिक श्लोक ऐसे २ "त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्त्तनिशाचराः" इत्यादि सभी वेद वा ईश्वर का श्वास हुए धन्य हो!

वास्तव में इस कण्डिका के भिन्न २ दो वाक्य हैं यथा—अरे हे मैत्रेयि! (अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतत्) इस सब से बड़े भूत परमेश्वर का श्वास यह है कि (ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः) ऋग्, यजुः, साम और अथर्व। तथा (इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि एतानि सर्वाणि) ये सब (अस्यैव) इसी जीवात्मा के (निःश्वसितानि) श्वास हैं। इस अर्थ में ठीक संगति मिलती है इसी लिये स्वामी जी ने पूर्व वाक्य लिखा जिस में वेदों का वर्णन है उत्तरवाक्य में जीवकृत इतिहासादि का वर्णन होने से छोड़ दिया सो ठीक ही था अब यदि महन्त जी के कथनानुसार अर्थ माने तो नास्तिकादिरचित सूत्रश्लोकादि समस्तग्रन्थ ईश्वर के श्वास ठहरेंगे और "भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः" के अनुसार ऋग्, यजुः, सामादि से इतिहासादि का भिन्न ग्रहण रहने से एकता वा अभेद फिर भी नहीं रहा क्योंकि ऋगादि के अन्तर्गत तो इतिहास आदि फिर भी न ठहरे। परमेश्वर के श्वास महन्त जी के अर्थ से भले ही ठहर जावो—साध्य की सिद्धि तथापि नहीं क्योंकि महन्त जी का साध्य ऋगादि से ब्राह्मणों का अभेद अर्थात् ऐक्य है। सो नहीं हुआ॥

४—पृष्ठ ४ से ५ तक महन्त जी लिखते हैं कि स्वामी जी ने ब्राह्मणग्रन्थों के ऋषिकृत होने में कोई प्रमाण नहीं दिया॥

उत्तर—जब कि ब्राह्मणग्रन्थ इतिहासों से भरे पड़े हैं तब—

५—यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम्। सांख्य० अ० ५। सूत्र ५०।

जिस ग्रन्थकर्त्ता का नामादि स्पष्ट न भी हो परन्तु ग्रन्थ देखने से "कृतबुद्धि" अर्थात् किसी पुरुष का बनाया प्रतीत हो वह ग्रन्थ पौरुषेय अनीश्वरकृत जानना चाहिये यह सिद्ध है कि जब बहुत ऋषियों के जीवनचरित्र ब्राह्मणों में आये हैं जैसा कि—"सुकेशा च भारद्वाजः इत्यादि" उपनिषद् तथा "जनमेजयो ह वै परीक्षितः" इत्यादि गोपथ से स्पष्ट है कि वह ग्रन्थ सुकेशा और भारद्वाज और परीक्षितपुत्र जनमेजय के पश्चात् रचे गये वा उन का कोई भाग। यदि कहो कि मन्त्रसंहिता में भी ऋषियों के नाम हैं सो वहां वे नाम ऋषियों के नहीं किन्तु यौगिकार्थ से अन्य वस्तुओं का अर्थ है।

६—महन्त जी—१ मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्। इति यज्ञ परिभाषामापस्तम्बः।

२—ऐसा ही पाठ शुक्लयजुः प्राति० इस से सिद्ध करते हैं कि मन्त्र और ब्राह्मण वेद है।

उत्तर—आपस्तम्ब, कात्यायन की ये यज्ञ परिभाषा हैं यह बात तो आप स्वयं ही लिखते हैं जब यज्ञपरिभाषासूत्र है तब तो केवल उसी ग्रन्थ में माना जायगा—जैसे पाणिनि मुनि ने अपनी अष्टाध्यायी में वृद्धिरादैच् १। १। १। अदेङ्गुणः १। १। २ इन सूत्रों से आ, ऐ, औ की वृद्धि संज्ञा और अ, ए, ओ, की गुणसंज्ञा मानी है तो वह संज्ञा केवल व्याकरण में मानी जाती है, दर्शनशास्त्रों में गुणगुणी शब्दों से अ, ए, ओ का ग्रहण नहीं होता इसी प्रकार आपस्तम्ब कात्यायन ने यज्ञ परिभाषा में दोनों को वेद माना है न कि सर्वत्र॥

७—महन्त जी—मन्त्रब्राह्मणमित्याहुः। इति बौधायनः।

मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनों का नाम वेद हैं ऐसा बौधायन जी कहते हैं।

वाह! बौधायन जी ने तो इस पाठ में वेद शब्द भी नहीं पढ़ा फिर उन का अर्थ कपोलकल्पित नहीं तो क्या है। और नहीं तो इसी को प्रमाण कोटि में घरघसीटा जिस में वेद पद तक नहीं॥

८—महन्त जी—मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदस्त्रिगुणं यत्र पठ्यते। इति परिशिष्टे।

इस प्रमाण से मन्त्रब्राह्मण को वेद सिद्ध करते हैं परन्तु इस का अर्थ यह है कि जहां १ मूलसंहिता २ पदपाठ और ३ क्रम इन तीनों का पाठ किया जाय वहां मन्त्र और ब्राह्मण को पारिभाषिकतया (इस्तलाहन) वेद कहते हैं न कि सर्वत्र ॥

९–महन्त जी–विधिमन्त्रयोरेकार्थ्यमैकशब्द्यात् १ तच्चोदकेषु मन्त्राख्या २ शेषे ब्राह्मणशब्दः ३ पूर्वमी० सूत्र ३०।३१।३२।

इन सूत्रों से कहते हैं कि विधि (ब्राह्मण) और मन्त्र का एक अर्थ है क्योंकि दोनों की "ऐकशब्द्यात्" एक वेद संज्ञा है ॥

२–तिस अभिधान के उपदेशकों में "मन्त्र" यह संज्ञा प्रसिद्ध है ।

३–शेष जो है विधिरूप वेदभाग सो ब्राह्मण कहा है इत्यादि–

उत्तर–यदि महन्त जी इन सूत्रों का अर्थ अक्षरानुकूल और प्रकरणानुकूल करते तो उन्हें ऐसी भ्रान्ति न होती–यथा–"विधिमन्त्रयोरेकार्थ्यमैकशब्द्यात्" यहां महन्त जी ने जो "विधि" शब्द से ब्राह्मण लिया इस में कोई प्रमाण नहीं दिया । किन्तु महन्त जी के ही लिखे हुवे अगले सूत्र "तच्चोदकेषु मन्त्राख्या" से सिद्ध है कि "चोदक" अर्थात् विधि वा विधायक को मन्त्र कहते हैं अतएव पूर्वसूत्र का यह अर्थ हुवा कि "विधिमन्त्रयोरेकार्थ्यम्" विधि और मन्त्र का एक ही अर्थ है अर्थात् जिस को विधि कहते हैं उसी को मन्त्र भी कहते हैं । भला फिर विधि शब्द से ब्राह्मण कैसे लिया ? ।

१०–तीसरे सूत्र "शेषे ब्राह्मणशब्दः" का अर्थ तो विलकुल प्रकरणविरुद्ध है क्योंकि शेष का अर्थ विधि नहीं है । विधि तो उपरोक्त लेखानुसार मन्त्र ही को कहते हैं किन्तु "शेष" का अर्थ मीमांसाकार जैमिनि जी स्वयं करते हैं यथा–

११–अथातः शेषलक्षणम् । मी० अ० ३ पा० १ सू० १

अर्थ–अब शेष का लक्षण करते हैं । यथा–

१२–शेषः परार्थत्वात् अ० ३ पा० १ सू० २

शेष उस को कहते हैं जो पराया अर्थ करे सो ब्राह्मण पराया अर्थात् वेद का अर्थ बतलाते हैं अतएव वेद से भिन्न हैं ॥

१३–महन्त जी "विधिस्तुतिकरं शेषं ब्राह्मणं कथयन्ति हि" के अर्थ में क्या चतुराई करते हैं कि विधिस्तुतिकारक वाक्यों को ब्राह्मण कहते हैं हां, हां, ठीक

तौ हैं विधि (वेद) की स्तुति करने वाले वाक्यों को ब्राह्मण कहते हैं अर्थात् ब्राह्मण वेद नहीं किन्तु वेद की अर्थरूप स्तुति करते हैं ॥

१४–आगे पृष्ठ ७ में महन्त जी लिखते हैं—

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।
सर्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥

यह मनु का श्लोक लिख कर कहते हैं कि देखो मनुस्मृति में ब्राह्मणों को वेद माना है क्योंकि–

स योऽनुदिते जुहोति यथा कुमाराय वा वत्साय वाऽजाताय स्तनं प्रतिदध्यात् तादृक् । तदथ य उदिते जुहोति यथा कुमाराय वा वत्साय वा जाताय स्तनं प्रति दध्यात्तादृक् । इत्यादि ऐतरेय ब्राह्मणे ॥

ऐसा पाठ ब्राह्मण में आया है जैसे को मनु जी वैदिकी श्रुति कहते हैं इत्यादि ॥

उत्तर–प्रथम तौ जैसा पाठ मनु के श्लोक में है वैसा उक्त ब्राह्मण में भी नहीं फिर "ब्राह्मण की ओर संकेत है" यह कैसे माना जाय यदि कहो कि आशय मिलता है सो भी नहीं क्योंकि मनु का आशय तौ यह है कि "सूर्य के उदय हुए वा विना उदय हुए वा समयाध्युषित होने पर सर्वथा यज्ञ करना चाहिये यह वैदिकी श्रुति है" और ब्राह्मण का आशय है यह कि "जो उदय हुए पर हवन करे वह उत्पन्न हुए लड़के वा बछड़े को दूध पिलाता है और जो विना उदय हुए हवन करे वह विना उत्पन्न हुए लड़के वा बछड़े को दूध पिलाता है इस का भावार्थ यह हुवा कि विना सूर्य्योदय के हवन करना ऐसा निष्फल है जैसा विना उत्पन्न हुए लड़के वा बछड़े को दूध पिलाना असम्भव है" अब मनु और ब्राह्मण में तौ विरोध रहा तब मनु ने ब्राह्मण की ओर संकेत करके उसे वेद माना यह कहां सिद्ध हुवा–

१५–द्वितीय, वैदिकी श्रुतिः का तात्पर्य्य यह भी हो सक्ता है–

१६–"प्रयोजनम्" इस सूत्र से प्रयोजन अर्थ में वेद शब्द से प्रत्यय है तब यह अर्थ हुवा कि—

वेदःप्रयोजनमस्य वैदिकं ब्राह्मणं तत्रत्या इयं श्रुतिः

वेद है प्रयोजन जिस का ऐसे ब्राह्मण की यह श्रुति है ।

१७ तृतीय—यदि दुर्जनतोष न्यायानुसार यही मान लें कि मनु ने ब्राह्मण को ही यहां वेद कहा है तो कात्यायन की यज्ञ परिभाषा के अनुसार यज्ञ में केवल कहा है सर्वत्र नहीं—परन्तु यह पक्ष भी सर्वथा निर्बल है क्योंकि—

१८—विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम् । जै० अ० १ । पा० ३ । सूत्र ३ ।

के अनुसार यदि कोई विषय ब्राह्मणादि का वेद से विरुद्ध हो तो त्याज्य है और यदि विरोध न हो परन्तु वेद में स्पष्टतया उस का मूल भी न दीख पड़े तब अनुमान करना चाहिये कि ऋषियों ने किसी मन्त्र का किसी प्रकार यह आशय समझा होगा अतएव मनु के उक्त वचन का विरोध वेद से नहीं और ब्राह्मण से भी आशय नहीं मिलता तब यही अनुमान करना उचित है कि वेदानुकूल है ।

१९ पृष्ठ ७ सं० (१५) में महन्त जी लिखते हैं कि—

वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः । मनु० २ । १६५

सम्पूर्ण वेद पढ़ना चाहिये, भला इस से क्या ब्राह्मण वेद होगये. वस्तुतः महन्त जी ने "मन्त्र और ब्राह्मण वेद है" इस साध्य को विना प्रमाण के सिद्ध मान कर लिख दिया कि "सम्पूर्ण वेद पढ़ना चाहिये" उन के पेट में यह बात रक्खी है कि "सम्पूर्ण" कहने से मन्त्र, ब्राह्मण दोनों आगये, वाह! क्या "सम्पूर्ण" का तात्पर्य आद्योपान्त मन्त्रसंहिता नहीं है ? ॥

२०—आगे महन्त जी पृष्ठ ८ में श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायः" इस अमरकोष के प्रमाण से वेद का नाम "आम्नाय" सिद्ध करके फिर पृष्ठ ९ में—"आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च. ब्राह्मणानि च । इस कौशिक सूत्र में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को "आम्नाय" कहा देख कर समझते हैं कि अमरकोष में "आम्नायः" वेद का नाम है और कौशिक सूत्र में मन्त्र, ब्राह्मण दोनों को "आम्नाय" कहा तब दोनों वेद हुए—परन्तु अमरकोश के तृतीयकाण्ड, संकीर्णवर्ग, श्लोक ७ में यह लिखा है कि—"आम्प्रच्छन्नमथाम्नायः सम्प्रदायः क्षयेक्षिया" इति अर्थात् "आम्नाय" सम्प्रदाय

को कहते हैं सम्प्रदाय गुरु परम्परा वा रीति भांति वा चालढाल, को कहते हैं जिस से सिद्ध है कि कौशिक सूत्र में "आम्नाय" शब्द सम्प्रदाय का नाम है वेद का नहीं और द्विजों का सम्प्रदाय वा परम्परा मन्त्र ब्राह्मण दोनों है परन्तु दोनों वेद हैं यह नहीं क्योंकि ऐसा मानने में मीमांसा सूत्र ३१ अ० २ पा० ३

२१—अपि वा प्रयोगसामर्थ्यान्मन्त्रोऽभिधानवाची स्यात्।

से विरोध आता है क्योंकि इस में प्रयोगसामर्थ्य से मन्त्र ही वेद नाम का वाची है। अतएव ब्राह्मण वेद नहीं॥

२२—आम्नायसमाम्नायशब्दौ वेद एव रूढौ इति लघुशब्देन्दुशेखरे।

इस प्रमाण से कहते हैं कि आम्नाय और समाम्नाय वेद ही के वाचक रूढ हैं सो लघुशब्देन्दुशेखरकर्त्ता नागेशभट्ट का कथन एक तो उपरोक्त अमरकोष के ही विरुद्ध है क्योंकि उस में आम्नाय शब्द वेद और सम्प्रदाय दोनों अर्थ में है और नागेश कहते हैं कि "वेद एव" वेद ही में रूढ हैं। दूसरे नागेश का कथन व्याकरण ही के विरुद्ध है व्याकरण में अइउण् इत्यादि १४ सूत्रों के अन्त में।

२३—" इत्यक्षरसमाम्नायः " ऐसा लिखा है तब क्या नागेश के कथनानुसार महन्त जी पाणिनिकृत "अ इ उ ण् आदि सूत्रों को भी समाम्नाय कहने से वेद समझेंगे ?।

२४—पृष्ठ ८ अङ्क (२१) व (२२) और पृष्ठ ९ अङ्क (२५) का उत्तर हमारे अङ्क २० के अन्तर्गत है।

२५—स्वरसंस्कारयोश्छन्दसि नियमः। और—
स्यादाम्नाय धर्म्मित्वाच्छन्दसि नियमः। प्राति० अ० १ सूत्र० १।४॥

इन सूत्रों से स्वर उदात्तादि तथा संस्कार पादव्यवस्था का वेद में नियम है सो मन्त्रसंहिता में नियम है ब्राह्मण में नहीं।

२६—पृष्ठ ९ अङ्क २७ व २८ में महन्त जी स्वयं लिखते हैं कि—

२७—अथाप्युपन्नार्था भवन्ति। ओषधे त्रायस्वैनम्। यजुः। अ० ४ मं० १। स्वधिते मैनथंहिथंसीः। यजुः। अ०४। मं० १

इत्याह । हिंसन् इत्याशङ्क्य समाहितम् । २८ ।
यथो एतदुपपन्नार्था भवन्तीत्याम्नाय वचनादहिंसा प्रतीयेत । निरु० अ० १ । पा० ५ । खं० २ ।

देखो ! इस निरुक्त के प्रमाण में मन्त्रसंहिता के उदाहरण हैं परन्तु अङ्क २९ में जो—

एषां लोकानां रोहेण सवनानां रोह आम्नात इति । नि० । अ० ७ पा० ६ खं० ४ । इत उत्तरञ्चैतत्सिद्धान्ते । यथो एतद्रोहात् इत्येव रोहश्चिकीर्षित इति आम्नायवचनाद्भवति । निरु० अ० ७ । पा० ७ । खं० १ ।

लिख कर महन्त जी कहते हैं कि इस निरुक्त में आम्नाय शब्द से ब्राह्मणों का ग्रहण किया है ।

२७—उत्तर—आम्नाय शब्द से ब्राह्मण का ग्रहण किया सो प्रमाणशून्य हुआ, सम्प्रदायपरक आम्नाय शब्द है वेद परक नहीं ॥

२८—महन्त जी—पृष्ठ १० अङ्क (३०) में लिखते हैं कि—

समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्य इति । निरु० अ० १ पा० १ । खं० १ ॥

यहां निरुक्तारम्भ में ही मन्त्रब्राह्मण दोनों का ग्रहण समाम्नाय शब्द से किया है ।

उत्तर—भला ! यहां मन्त्र, ब्राह्मण पद नहीं मन्त्र वा ब्राह्मणों का उदाहरण नहीं फिर—"मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ताहरीतकी" मुख तो है ही फिर दश हाथ लंबी हैड़ बताने वाले को कौन रोक सक्ता है तद्वत् इतने से मन्त्रब्राह्मण को वेद मानने वाले को कौन रोक सक्ता है ? विद्वान् लोग

२९—सायणाचार्य्य का यह कथन कि:—

"मन्त्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेद इति" माननीय नहीं क्योंकि हमारे संख्या २१ में लिखे मीमांसासूत्र के विरुद्ध है । जैमिनि से बढ़कर सायण नहीं है ॥

३०—महन्त जी लिखते हैं कि—

न श्रुतिविरोधो रागिणां वैराग्याय तत्सिद्धेः । इस सांख्य सू० ५१ अ० ६ ।

के उदाहरण में ब्राह्मण की ही श्रुति हैं-

उत्तर-"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" । यह ऋग्वेदसंहिता भी तो उदाहरण है फिर मन्त्र को छोड़ उपनिषद् वा ब्राह्मण का उदाहरण वा प्रत्युदाहरण देना टीकाकारों की भूल है सांख्याचार्य्य कपिल को ब्राह्मणों का वेदत्व अभीष्ट नहीं ॥

३१-"मन्त्रवर्णाच्च । " वेदान्त सू० ४४ अ० २ पा० ३ के उदाहरण देने वाला भी वेद नहीं पढ़ा यदि पढ़ा होता तो यजुः अ० ३१ मं० ३ के उदाहरण में टीकाकार-

"तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोस्य सर्वा भूतानि" ऐसा अशुद्ध पाठ क्यों लिखता किन्तु-

"एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि"

इस प्रकार यथार्थ पाठ लिखता, बस इस प्रकार के टीकाकारों ने अपनी अज्ञानता से "अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः" ऐसा ब्राह्मण वाक्य उदाहरण में दे दिया तो टीकाकारों की भूल है व्यासदेव को ब्राह्मणों का वेदत्व अभीष्ट नहीं । यहां तक तो ब्राह्मणों के वेदत्व खण्डन का लेख हुआ ॥

३२-अब आगे पृष्ठ ११ में महन्त जी यह लिखते हैं कि यदि ब्राह्मणों में इतिहास होने से ब्राह्मण वेद नहीं तब तो मन्त्रसंहिता में भी इतिहास होने से वह भी वेद न ठहरेगी इत्यादि-

उत्तर-यह लिखने से तो महन्त जी " मतानुज्ञा " नामक निग्रह स्थान में आकर परास्त हुए तथाहि-

स्वपक्षदोषाभ्युपगमात्परपक्षदोषप्रसङ्गो मतानुज्ञा । न्याय-सूत्र २१ अ० ५

अपने पक्ष के दोष को स्वीकार करके परपक्ष में भी वही दोष देना, मतानुज्ञा नाम निग्रहस्थान (पराजयस्थान) है । इससे इतिहास के दोष को ब्राह्मण ग्रन्थों में स्वीकार करके संहिता में भी वही दोष देते हैं तो संहिता में वह दोष

नहीं है यह सिद्ध करना हमारा काम है परन्तु महन्त जी ब्राह्मणों में उक्त दोष स्वीकार करके परास्त हो चुके सो इनका लेख ऐसा ही है जैसा किसी ने कहा था कि "मुझे अपनी गई की चिन्ता नहीं परन्तु चचा की रही की चिन्ता है" ऐसे ही महन्त जी सोचते हैं कि ब्राह्मणों की वेदसंज्ञा न रही इसकी कुछ चिन्ता नहीं परन्तु मन्त्र की वेदसंज्ञा हो जावे यह चिन्ता है । अतएव स्वामी दया० जी ने जो दोष इतिहासों का ब्राह्मणों में दिया वही दोष आप मन्त्र में देने को उद्यत हुए हैं । भला मन्त्र में इतिहास दोष दे देने से क्या ब्राह्मण निर्दोष हो जायगा ? महात्मा जी ! मन्त्रसंहिता में इतिहास का लेश भी नहीं है और आप जो पृष्ठ ११ अङ्क ३४ । ३५ । ३६ में केवल इतना लिख कर कि:—

१—किमिच्छन्ती सरमा । ऋ० मं० १० । सूक्त १०८

२—ओचित्सखायम् ऋ० मं० १० । सूक्त १० ।

३—हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे । ऋ० मं० १० सूक्त ९५

कहते हैं कि इनमें देवतों की कुतिया, यमयमी, उर्वशी अप्सरा आदि का वृत्तान्त है परन्तु न तो इन मन्त्रों के टुकड़ों का अर्थ करते हैं न सूक्तों का केवल इतने से टालते हैं कि अर्थ देखना हो तो पं० माधवप्रसाद का हिन्दी ऋग्वेदभाष्य देख लो परन्तु यदि महन्त जी इन मन्त्रों का अर्थ लिखते तो उन के अर्थ की समीक्षा हम भी करते अब वृथा ग्रन्थ बढ़ाना उचित नहीं समझते।

३३—पृष्ठ १२ पं० ४ में महन्त जी स्वयं ही लिखते हैं कि:—जो कहो कि स्वामी जी ने जो "त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्०" यह मन्त्र लिखा है इसका उत्तर क्यों नहीं देते । इस पर महन्त जी कहते हैं कि "इस मन्त्र में तो स्पष्टतः मनुष्यों का नाम नहीं है फिर संस्कृत रहित साधारण पुरुषों को धोका देने के लिये यह मन्त्र लिखा है सो इसका उत्तर लिखने का हमको कुछ प्रयोजन नहीं" भला ! इसमें स्वामी जी ने धोका क्या दिया प्रत्युत उक्त मन्त्रस्थ कश्यपादि पदों से लोगों को ऋषिनाम का धोका होता उससे बचाया है सो यह आपने भी ऊपर स्वीकार कर लिया है कि "इस मन्त्र में मनुष्यों का नाम नहीं है" फिर व्यर्थ किसी ऋषि को धोकेबाज़ लिखना ही धोका है ।

३४—पृष्ठ १२ पं० १७ में कहते हैं कि कश्यप से कूर्म्मावतार की सिद्धि होती है परन्तु सो हम अवतारों के विषय में दिखावेंगे इति अच्छी बात है जब आप दिखाइयेगा तबही हम खण्डन लिखेंगे ॥

३५—पृष्ठ १२ पं० १९ से लिखते हैं कि स्वामी जी ने जो लिखा है कि मन्त्र-संहिता की प्रतीक रखकर ब्राह्मणों में अर्थ किया है । ब्राह्मणों की प्रतीक मन्त्रसंहिता में नहीं ॥

इसका उत्तर महन्त जी कुछ का कुछ देते हैं और—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ॥ (१) हिरण्यगर्भ इत्येषः (२) मा मा हिꣳसीदित्येषा (३) यस्मान्न जात इत्येषः । यजुः अ० ३१ मं० ३ ॥

लिखकर कहते हैं कि देखो संहिता में भी १ "हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे" की प्रतीक है और २—"मा मा हिꣳसीदि० यह यजुः अ० १२ मं० १०२ की, और ३—"यस्मान्न जातः" यह यजुः अ० ८ मं० ३८ की प्रतीक है । अब इस मन्त्रसंहिता को व्याख्यान मानकर वेद न मानिये इत्यादि—

उत्तर—महन्त जी महाराज ! स्वामी जी ने यह लिखा था कि मन्त्र में ब्राह्मण की प्रतीक नहीं सो आप को ब्राह्मण की प्रतीक दिखलानी थी यह तो आपने मन्त्रों की ही प्रतीक दिखलायी और फिर उनका अर्थ नहीं है जैसा ब्राह्मण में है फिर स्वामी जी का लिखना ही ठीक रहा ॥

३६—फिर पृष्ठ १३ पं० १३ में लिखते हैं कि ब्राह्मणग्रन्थों में भी इसी प्रकार (इषे त्वोर्जे त्वा) इस मन्त्र की व्याख्या शतपथ में मिलती है इसके सिवाय अन्य किसी मन्त्र का पता नहीं लगता इत्यादि—

उत्तर—पता तो उसको लगे जो ग्रन्थ को देखे आप तो "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा" किया । यदि आप चाहें तो ॥

१—इषे त्वोर्जे० २ प्रत्युष्टꣳ रक्षः ३ कस्त्वा युनक्ति० ४ ध्रुतमसि हविर्धा० ५ देवस्य त्वा सवितुः० । ६—पवित्रे स्थो वैष्ण० ७—शर्मास्यवधूतꣳ रक्षो० यजु० अ० १ मं० १ । ७ । ६ । ९ । १० । १२ । १४ इत्यादि ।

अनेक मन्त्रों की प्रतीक दिखला दें । एक काम करो महन्त जी ! यदि (इषे त्वोर्जे०) के सिवाय अन्य मन्त्रों की प्रतीक आप को दिखा दी जावें तब तो ब्राह्मणों के वेदत्व साधन का हठ छोड़ दो गे वा नहीं ? ॥

३७—फिर " उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते " लिख कर कहते हैं कि पृथिवी को गलाने से जल का नाम उदक है, यहां संहिता ही में उदक शब्द का अर्थ है तो क्या यह भी वेद नहीं ।

उत्तर—यहां किसी मन्त्र वा ब्राह्मण के आये हुये " उदक " शब्द का अर्थ नहीं किया जैसे निरुक्त वा ब्राह्मण में आता है अतएव संहिता में यह दोष नहीं आ सकता ॥

३८—फिर पृष्ठ १४ पं० १ में लिखते हैं कि भाष्यकार पतञ्जलि ने भी तो "अथ शब्दानुशासनम्" इत्यादि अपने वार्त्तिकों की आप ही व्याख्या की है।

उत्तर—आप की यह बात ठीक नहीं क्योंकि भाष्यकार ने अपने तथा पाणिनि के सूत्रों की व्याख्या की है परन्तु पाणिनि ने भाष्यकार के वार्त्तिकों की व्याख्या नहीं की इसी प्रकार संहिता में ब्राह्मणों की व्याख्या नहीं की ॥

३९—फिर पृष्ठ १४ पं० १० से लिखते हैं कि सांख्याचार्य्य ने—"अथ त्रिविध-दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः" । इस प्रथम सूत्रस्य "अथ" शब्द की व्याख्या अपने आप ही पञ्चमाध्याय के १ सूत्र में की है यथा—(मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात्फलदर्शनात्) अर्थात् अथ शब्द मङ्गलाचार के लिये प्रथम सूत्र में आया है ॥

उत्तर—वाह ! वाह ! क्या सांख्याचार्य्य अपने ही "अथ" शब्द का अर्थ करते हैं और अन्य लोग जो "ओ३म्" आदि से मङ्गलाचरण करते हैं उन का प्रयोजन नहीं बतलाते ! ! ! ऐसी व्याख्या सांख्याचार्य को तो अभीष्ट न थी यह तो आप का ही अपूर्व पाण्डित्य है ॥

४०—आप लिखते हैं कि तैत्तिरीय आरण्यक में ब्राह्मण ग्रन्थों के पाठ भी तो आते हैं । महात्मा जी ! आरण्यक में तो आते होंगे परन्तु मन्त्रसंहिता में दिखा-इये आरण्यक पश्चात् रचित है उस में आने से संहिता में क्या दोष आया ? यह तो वही बात हुई कि—"ब्राह्मणः पण्डितः क्षत्रियस्य शूरत्वात्" संहिता में दोष दिखाना था कि आरण्यक में दिखाया इस से आप का क्या इष्ट सिद्ध हुआ ? ॥

४१—स्वामी जी ने जो महाभाष्य का प्रमाण दिया है कि भाष्यकार ने वैदिक शब्दों के उदाहरण में (अग्निमी०) (शन्नो देवी०) (अग्न आयाहि०) (इषे त्वोर्जे०)

संहिता वाक्य ही उदाहृत किये ब्राह्मणवाक्य नहीं जिस पर महन्त जी पृ० १५ में कहते हैं कि वेद के पूर्वभाग के उदाहरण दे दिये ब्राह्मण उत्तरभाग हैं अतएव उन के उदाहरण नहीं दिये–इत्यादि।

यह आप का हेतु "साध्यसमहेत्वाभास" होनेसे आप को निग्रहग्रहगृहीत करता है क्योंकि ब्राह्मणों का वेदत्व जैसे साध्य है वैसे उत्तरभागत्व भी साध्य है साध्य के समान हेतु को साध्यसमहेत्वाभास कहते हैं अतएव आप निग्रह स्थान में गिरे॥

४२–महन्त जी—एवं हि श्रूयते बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रदिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम। महाभा० आ० १।

लिख कर कहते हैं कि देखो! यदि महाभाष्यकार ब्राह्मण को वेद न मानते तो श्रुति शब्द करके ब्राह्मणवाक्य उपरोक्त क्यों लिखते?॥

उत्तर–प्रथम तो महन्त जी को यह बताना चाहिये कि उपरोक्त पाठ कौन से ब्राह्मणग्रन्थ का है और यदि बतला देवें तो भी वहां "श्रुति" शब्द नहीं किन्तु "एवं हि श्रूयते" ऐसा पाठ है जिस का यह अर्थ है कि–"ऐसा ही सुना जाता है" सो इस में श्रुति शब्द न आने से ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं॥

४३–फिर--वेदशब्दा अप्येवं वदन्ति। योग्निष्टोमेन यजते य उचैनमेवं वेद० इत्यादि महाभाष्य आ० १॥

लिख कर महन्त जी कहते हैं कि इस का अर्थ यह है कि "वेद के शब्द भी ऐसा कहते हैं यह कह कर पतञ्जलि जी "योग्निष्टोमेन" यह ब्राह्मणवाक्य लिखते हैं–

उत्तर—यहां वेदशब्दाः इस का अर्थ यह है कि–"वेदाः शब्द्यन्ते स्तूयन्ते यैस्ते वेदशब्दा ब्राह्मणग्रन्थाः" अर्थात् वेदों की अर्थरूप स्तुति करने वाले ब्राह्मणग्रन्थों में ऐसा कहा है। यदि महाभाष्यकार को वेद साक्षात् (खास) अभिप्रेत होते तो "वेदा अप्येवं वदन्ति" ऐसा पाठ होता अतएव महन्त जी का लिखना कैसे ठीक हो सक्ता है कदापि नहीं॥

४४–फिर पृष्ठ १६ पं० २६ से स्वामी जी की इस शङ्का पर कि–"यदि ब्राह्मण वेद हैं तो अष्टाध्यायी में "द्वितीया ब्राह्मणे २। ३। ६०॥ चतुर्थ्यर्थे बहुलं

छन्दसि २ । ३ । ६२ । इत्यादि सूत्रों में "ब्राह्मणे कह कर फिर "छन्दसि,, क्यों कहते इस से ब्राह्मणग्रन्थ छन्द (वेद) नहीं है,, महन्त जी लिखते हैं कि—

छन्दः । अ० २ सू० १ पिङ्गले ।

इस प्रमाण से गायत्र्यादि मन्त्रों की ही छन्द संज्ञा है ब्राह्मणों में गायत्र्यादि छन्द नहीं अतएव पाणिनि जी ने "ब्राह्मणे" और "छन्दसि,, भिन्न २ लिखा है क्योंकि ब्राह्मण विषयक सूत्र छन्द में कैसे कार्य्य कर सकते इत्यादि ॥

उत्तर—इस से पूर्व पृष्ठ ८ में महन्त जी ने लिखा था कि—"स्वरसंस्कारयोश्छन्दसि नियमः" । प्राति० अर्थ किया था कि "स्वर उदात्तादि और संस्कार लोपागमादि जैसे मन्त्र में हैं वैसे ब्राह्मण में भी हैं अतएव दोनों ही में अर्थात् (छन्दसि) वेद में नियम है" तो जब कि उक्त सूत्र में महन्त जी छन्द का अर्थ वेद कर चुके और अब "छन्दः" इस पिङ्गल सूत्र से मन्त्रसंहिता ही को छन्द कहते हैं तो अपने मुख से आप ही आगा पीछा भूल कर मन्त्रसंहितामात्र को वेद सिद्ध कर दिया—सत्य को कहां तक छिपाते अन्त को साधु ठहरे तिस में उदासीन !!!

४५—फिर पृष्ठ १७ अङ्क (४५) में स्वामी जी ने जो—

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु । अष्टा०—४ । ३ । १०५

लिखा है कि ब्राह्मण और कल्प, उक्त सूत्र से पुराणे (प्राचीन) ऋषियों के प्रोक्त (बनाये हुए) सिद्ध हैं ईश्वरकृत नहीं जिस पर महन्त जी लिखते हैं कि "याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकालत्वात् (महाभाष्य) जिस का अर्थ तो यह हुवा कि याज्ञवल्क्यादि के बनाये ब्राह्मण कल्पग्रन्थों के वाच्य होते णिनि प्रत्यय न हो क्योंकि याज्ञवल्क्यादि ऋषि पाणिनि जी के समय में थे अतएव पुराणे अर्थात् प्राचीन नहीं—महन्त जी का आशय यह है कि जो लोग शतपथब्राह्मण को याज्ञवल्क्य रचित कहते उन का मुख बन्द हुआ । धन्य हो महात्मा ! आप तो बार २ स्वामीदया० जी की पुष्टि करते हैं स्वामी जी ने तो ब्राह्मणों के अनीश्वरीय होने में थोड़े ही प्रमाण दिये थे आपने यह महाभाष्य का प्रमाण देकर और भी पुष्ट किया कि पुराणे ऋषियों के बनाये ब्राह्मण कल्पवाच्य हों तो तृतीयान्त से णिनि प्रत्यय हो परन्तु याज्ञवल्क्यादि के बनाये ब्राह्मण कल्पवाच्य हों तो न हो क्योंकि याज्ञवल्क्यादि पुराणे नहीं—इस आप के ही दिये प्रमाण और कथन से ब्राह्मणकल्प दो प्रकार के सिद्ध हुए कुछ ब्राह्मण,कल्प प्राचीन ऋषियों

के बनाये हैं और कुछ याज्ञवल्क्यादि पाणिनि समकालिक ऋषियों के बनाये हैं "जादू तो वह जो शिर पै चढ़के बोले" ॥

४६-फिर पृष्ठ १८ अङ्क (४६) में कहते हैं कि-

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि । अष्टा० । ४ । २ । ६६

इस सूत्र से छन्द भी प्रोक्त प्रत्ययान्त सिद्ध हैं तो संहिता भी वेद न ठहरेंगी इत्यादि-

महन्त जी फिर मतानुज्ञानिग्रहस्थान में गिरे अर्थात् ब्राह्मणगत दोष को न हटा कर संहिता में दोष देने लगे परन्तु यह छन्द शब्द भी हमारी अभिप्रेत चार शुद्ध वेदसंहितापरक नहीं किन्तु तैत्तिरीय शाखा परक है उस में भी छन्द हैं अतएव "तित्तिरिणा प्रोक्ता तैत्तिरीय शाखा" यह निरुक्ति चरितार्थ हुई और वही शाखा जो ऋषिकृत हैं और छन्दोबद्ध हैं इस सूत्रस्थ छन्दः शब्द का उदाहरण हैं, मूल ऋगादिवेद नहीं क्योंकि किसी वृत्तिकर्त्ता ने इस के उदाहरण में अमुकेन प्रोक्तं, यजुः, साम, ऋक् अथर्व, ऐसा उदाहरण नहीं दिया तब इस सूत्रस्थ छन्दः पद का लक्ष्य हमारा अभिप्रेत (संहिता चतुष्टय) वेद नहीं अतएव वह (संहिता ४) प्रोक्त प्रत्ययान्त उदाहरण में न आने से उन पर प्रोक्तदोष नहीं आ सकता ।

४७-पृष्ठ १८ पं० २४ से लिखते हैं कि-"स्वामी जी ने-

ब्रह्म वै ब्राह्मणः । शतपथ कां० १३ अ० १ ।

इस प्रमाण से ब्रह्म और ब्राह्मण शब्द ग्रन्थ के वाची समझे सो यह जातिवाचक शब्द को ग्रन्थवाचक समझना स्वामी जी का (*आम्राणां पृष्टे कोविदारानाचष्टे) इस न्यायानुकूल उन्मत्तप्रलापवत् है । दूसरा दूषण यह देते हैं कि शतपथ में " ब्रह्महि ब्राह्मणः " ऐसा पाठ है जैसा स्वामी जी ने लिखा वैसा नहीं इत्यादि-

महन्त जी ! आपने ही शतपथ की १३ कण्डिका नहीं देखी वहां हि शब्द नहीं है वै शब्द है जैसा कि स्वामी जी ने लिखा है आपने हि शब्द शतपथ में दूसरे ठिकाने देखा है फिर अपने दृष्टिदोष को स्वामी जी पर लगाते क्यों नहीं डरते हो ?

---

*पाठ तो देखिये-"आम्रान् पृष्टः" के स्थान में "आम्राणां पृष्टे" ऐसा अशुद्ध लिखा है । वाह रे ! पाण्डित्य !

४८—और स्वामी जी ने जातिपरक को ग्रन्थपरक नहीं समझा यह आप भी जानते होंगे यदि उन की भूमिका आप ने देखी होगी तो। परन्तु आप ने तो देख भाल कर लोगों को भुलाने के लिये उन के पृष्ठ ८७ पं० १० ॥

चतुर्वेदविद्भिर्ब्रह्मभिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि वेदव्याख्यानानि तानि ब्राह्मणानि ॥

अर्थ—उपरोक्त शतपथ के प्रमाण से चतुर्वेदवेत्ता महर्षि ब्राह्मणों का नाम ब्रह्म है बस उन ऋषियों के बनाये होने से ब्राह्मण ग्रन्थों को भी ब्राह्मण कहते हैं अर्थात् ब्रह्म (ब्राह्मण, ऋषिवाचक) शब्द से "ब्राह्मण" शब्द बना है जो ग्रन्थों का वाचक है। स्वामी जी का तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणग्रन्थों का "ब्राह्मण" नाम ही उन को ब्रह्मर्षिकृत सिद्ध करता है। अतएव आप का अशुद्ध पाठ (आम्नाणां पृष्ठे) "आम्नान् पृष्ठः" (ऐसा चाहिये) आप ही पर गिरता है स्वामी जी पर नहीं॥

४९—आगे पृष्ठ २१ अङ्क ४८ में महन्त जी लिखते हैं कि—

चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः। एकशतमध्वर्युशाखाः। सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा बाह्वृच्यं नवधाऽथर्वणो वेद इति महाभाष्ये अ० १ पा० १। आ० १

इस प्रमाण से कि देखो महाभाष्य में १०१ यजुर्वेद की शाखा हैं। १००० सामवेद की। २१ ऋग्वेद की और ९ अथर्व वेद की शाखा हैं और षडङ्ग तथा रहस्यों समेत तो अनेक ही वेद हैं इसी से लिखा है कि (अनन्ता वै वेदाः) इति॥

उत्तर—महात्मा जी! ऊपर लिखी ११३० वेदों की शाखा हैं वा मूल वेद? शाखा और मूल कभी एक हो सकते हैं? कदापि नहीं, परन्तु हां शाखा बीज में से हीं उत्पन्न होती हैं इसी प्रकार मूल बीजरूप (४) संहितात्मक वेदों का विस्तारपूर्वक व्याख्यानरूप ११३० शाखा ऋषियों ने बनाईं जैसे बीज ले कर किसान लोग बोते और वृक्षादि को उत्पन्न करते हैं तद्वत्॥ और परस्पर विरोध देखिये कि यहां तो (अनन्ता वै वेदाः) कह कर वेदों को अनन्त बतलाते हैं और आगे पृष्ठ २२ में (लक्षं तु चतुरो वेदाः इति चरणव्यूहे शौनकः) इस प्रमाण से चारों वेदों के १००००० लक्ष श्लोक बतलाते हैं॥ महाशयो! (अनन्ता

वै वेदाः) का समास यह है कि (नास्त्यन्तो नाशो येषां तेऽनन्ता नित्या इत्यर्थः) "नहीं है अन्त अर्थात् नाश जिन का सो कहावें अनन्त अर्थात् वेद नित्य हैं"। और चरणव्यूह का श्लोक अशुद्ध भी है (क्योंकि चत्वारो वेदाः) के स्थान में "चतुरो वेदाः" यह अशुद्ध है) तथा लाख श्लोक वेद के हैं भी नहीं अतएव मिथ्या भी है॥

५०—पृष्ठ २१ अङ्क (४९) मेंः—ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिवि श्रितः।

अथर्व कां० १८ अनु० ४ मं० २४ कहते हैं कि देखो इस मन्त्र में "पुराण" शब्द ब्राह्मणों का वाचक है सो ऋग्, यजुः साम और (छन्दांसि) अथर्व तथा (पुराणं) पुराण (ब्राह्मण) ये सब परमेश्वर से उत्पन्न हुये॥

उत्तर—यहां पुराण शब्द सनातन अर्थ में है और वेदों का विशेषण है यथा—

(ऋचः)—तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था॥ जैमिनि सूत्र ३५ अ० २ पा० १।

जिन मन्त्रों में अर्थवश से पाद की व्यवस्था है वे। (सामानि) गीतिषु समाख्या। जैमिनि सूत्र ३६ अ० २ पा० १ जिन मन्त्रों से गायन होता है वे और (यजुषा सह) शेषे यजुः शब्दः। जै० अ० २ पा० सू० ३७ शेष जो ऋक् नाम से भिन्न यजुर्वेद। (पुराणं छन्दांसि) सनातन छन्दोबद्ध (चार) वेद हैं सो (सर्वे) सब (उच्छिष्टाज्जज्ञिरे) परमेश्वर से उत्पन्न हुये॥ यहां पुराणं यह एक वचन बहुवचन में आर्ष है। सो इस में तो "छन्दांसि" पद से जो चारों वेदों का विशेषण है सिद्ध हुआ कि चारों वेद छन्दोबद्ध हैं। और ब्राह्मण में छन्द नहीं अतएव महन्त जी के प्रमाण से हमारा पक्ष सिद्ध हुवा और महन्त जी परास्त हुवे॥

५१—आगे २२ पृष्ठ से अङ्क (५१) में लिखते हैं कि—

अहे बुध्निय [१]मन्त्रमें [२]इति मन्त्रस्य लक्षणम्। नास्त्यस्ति वास्य नास्त्ये तद्व्याप्त्यादेरवारणात्॥ याज्ञिकानां समाख्यानं लक्षणं दोषवर्जितम्। ते नुष्ठानस्मारकादौ मन्त्रशब्दं [३]प्रयुज्यते (न्यायविस्तर) अ० २ पा० १ अधि ७

(महन्त जी कृत भावार्थः)

"आधान प्रकरण में यह विचारणीय है कि मन्त्र किस का नाम है और ब्राह्मण किस का नाम है सो उन का निर्णय लिखते हैं देखिये (अहे बुध्नियम[४]न्त्र

नोट [१] [२] [३] [४] अङ्क जिन के साथ हैं वे शब्द अशुद्ध हैं॥

में[१]गोपाय य मृषय [२]स्त्रयिवि [३]दाविदुः) ऋचः सामानि [४]यजुंषि । माहि श्री रमृतासताम् । तै० कां० १ प्र० २ अनु० १ मं० २६ है (अहे) हे [५] आहिंसितव्य (बुध्निय) बुध्न जो मूल सम्पूर्ण जगत् की आदि अवस्था में उत्पन्न हुवा ऐसा जो है ऋगादिरूप मन्त्र, फिर वह कैसा ऋगादिरूप मन्त्र है कि (यं मन्त्रं) जिस मन्त्र को ([६]त्रयि [७]विदाऋषय विदुः) ऋगादि तीनों वेदों के जानने वाले ऋषि लोग जानते हैं। तिस मेरे मन्त्र को (गोपाय) अर्थात् भावी जो अनेक विघ्न हैं तिन से रक्षा करो" ॥ पृष्ठ २३ में यह भी लिखते हैं "गृहक्षेत्रादि की रक्षा छोड़ मन्त्र की रक्षा क्यों मांगी, उत्तर देते हैं कि सन्मार्गवर्ति पुरुषों को ऋगादि के मन्त्र ही श्री को बढ़ाते हैं। (अहे बुध्निय मन्त्र में) यह मन्त्र का लक्षण है। सो इस मन्त्र में मन्त्र का कोई लक्षण नहीं कहा इस से (नास्त्यस्ति) ब्राह्मण भागसे भिन्न मन्त्र है वा मिलित है इत्यादि व्याप्ति आदि के अभाव से कोई ऐसा लक्षण नहीं जो कि व्याप्ति अतिव्याप्ति इन दोषों से रहित हो"। यहां तक महन्त जी का लेख हुवा—

उत्तर—इस बार न्यायविस्तरकार का पाठ और अर्थ करने में खूब ही पाण्डित्य दिखाया है यद्यपि न्यायविस्तर का प्रमाण स्वामी जी को मान्य न था और महन्त जी अपने पुस्तक के प्रथम अंश में यह प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि हम स्वामी जी के मान्य वेद वेदाङ्ग के ही प्रमाण लिखेंगे सो महन्त जी प्रतिज्ञाभङ्ग करके निग्रहस्थान में गिर चुके तथापि उन से न्यायविस्तर का अर्थ नहीं हुवा कारण कि महन्त जी न्याय नहीं पढ़े तभी तो "व्याप्ति" को दोष बताते हैं (दोष तो अव्याप्ति, अति व्याप्ति होते हैं) परन्तु इतने पर भी जो कुछ अर्थ उन्हों ने लिखा है उस से उन का क्या अभीष्ट सिद्ध हुवा। यदि कहो कि उन का अभीष्ट यह सिद्ध हुवा कि मन्त्र का लक्षण ब्राह्मण से भिन्न न हो सकने से ब्राह्मण भी वेद हुवा सो भी नहीं क्योंकि पृष्ठ २३ में वे स्वयं लिखते हैं कि "याज्ञिकानां समाख्यानं लक्षणं दोषविर्जितम्" याज्ञिकों का समाख्यानरूपी लक्षण है सो दोष से रहित है तब लक्षण तो मन्त्र का दोषरहित होगया अर्थात् याज्ञिक लोग जिस को मन्त्र कह कर विनियोग करें वह मन्त्र सो ब्राह्मण का विनियोग किसी याज्ञिक ने नहीं किया अतएव ब्राह्मण मन्त्र नहीं यह महन्त जी के ही कथन से

नोट [१] [२] [३] [४] [५] [६] [७] अङ्क जिन के साथ हैं वे शब्द अशुद्ध हैं॥

सिद्ध हुआ ॥ इस शुद्ध लक्षण को छोड़ कर जो (१ विहितार्थाभिधायको मन्त्रः) २-(मननहेतुर्मन्त्रः) ३- असि पदान्तो मन्त्रः) ये तीन लक्षण स्वयं ही कर के उन में दोष देते हैं सो उन का लेख अरण्यरोदनवत् निष्प्रयोजन है क्योंकि उक्त ३ लक्षण हमारी ओर से नहीं किये गये अतएव उन का लिखना व्यर्थ है ॥

५२-आगे २४ पृष्ठ में जो-१-ऊरुप्रथस्व० तै० १। ६। ८। २-अग्निमीडे०। ऋ०१। १। १। १॥ ३-इषे त्वा०। यजुः अ०१ मं०॥ ४-अग्न आया हि० साम० १।१।१ ॥ ५-अग्नीदग्नीन्० तै० ६। ३। १ ॥ ६-अधःस्विदासी० तै० २। ८। ९॥ ७-अम्बे अम्बिके० यजु० २। ३ ॥ ८-पृच्छामित्वा० यजु०। २३। ६१ ॥ ९-वेदिमाहुः पर० यजु० २३। ६२ ये भी उदाहरण मन्त्र के समाख्यानरूप लक्षण के दिये हैं इन ९ में भी ब्राह्मण का कोई नहीं फिर ब्राह्मण मन्त्र कैसे हुये। अतएव ये उदाहरण उन के पक्ष को सिद्ध नहीं करते यदि कहो कि तैत्तिरीय के मन्त्र हैं तो भी तैत्तिरीय कोई ब्राह्मण नहीं क्योंकि उस में अन्य शतपथादि के समान "इति ब्राह्मणम्" ऐसा नहीं आता। यदि कहो कि तैत्तिरीय ब्राह्मण नहीं है तो ब्राह्मण का वेदत्व तो सिद्ध न हुआ परन्तु तैत्तिरीय का वेदत्व सिद्ध हुआ। सो भी नहीं क्योंकि आप के किये लक्षण से मन्त्रत्व सिद्ध हुआ परन्तु यह तो किसी की प्रतिज्ञा नहीं कि जो २ मन्त्र सो २ वेद। क्योंकि हम तो केवल ऋग्, यजुः, साम, अथर्व की चार संहिताओं को ही वेद मानते हैं जिस विषय में मीमांसा के ३ सूत्र हम ने पृष्ठ १८ में भी लिखे हैं। रहे तैत्तिरीय के मन्त्र सो (तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्। अष्टाध्या० ४। ३। १०२) इस सूत्र के अनुसार तित्तिरि ऋषि का बनाया है सो कैसे वेद होसक्ता है कदापि नहीं ॥

५३-पृष्ठ २५ अङ्क (५७) में जो न्यायविस्तरकार का लेख दिया कि (मन्त्रश्च ब्राह्मणञ्चेति द्वौ भागौ०) सो न्यायविस्तर का लेख जैमिन्यादि ऋषिकृत शास्त्रों के विरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं ॥

५४-पृष्ठ २५ अङ्क (५८) में जो न्यायविस्तर के मत से-"हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशसा, संशय, विधि, परकृति, पुराकल्प और व्यवधारणकल्पना इन ९ लक्षणों से युक्त जो हो सो ब्राह्मणग्रन्थ कहा जाता है" ऐसा लिखकर फिर पृष्ठ २६ पं० १० में आप ही न्यायविस्तरकृत लक्षण में दोष दिखाते हैं कि "देखो (इन्द्वो वा मुशन्ति हि) इत्यादि मन्त्रों में भी हेत्वादि ९ लक्षण मिलते हैं फिर मन्त्र ब्राह्मण का भेद कैसे सिद्ध हो सक्ता है इत्यादि-"

उत्तर—महन्त जी ! यह तो आप ने न्यायविस्तर का खण्डन किया सो न्यायविस्तर को हम भी प्रामाणिक नहीं मानते फिर उस के अशुद्ध लक्षण से भी ब्राह्मण का आम्नायत्वरूप साध्य भी सिद्ध न हुआ और हमारे पक्ष में कुछ दूषण नहीं आया ॥

५५—अङ्क (५९) और (६०) में जो (इति करणयुक्तो मन्त्रः) और (इत्याह इस वाक्य करके जो बंधा हो सो ब्राह्मण है) ये लक्षण करके उन में दूषण देते हैं सो व्यर्थ हैं क्योंकि उक्त लक्षण स्वामी दया० जी कृत नहीं ॥

५६—और अङ्क (६१) में जो (आख्यायिका रूपं ब्राह्मणम्) यह अधूरा लक्षण किया है उस का उत्तर हम अपने अङ्क (३२) में दे चुके हैं । इति ॥

५७—अङ्क (६२) में जो "तच्चोदकेषु मन्त्राख्या । शेषे ब्राह्मण शब्दः । ये दो जै० सूत्र लिखे हैं इन का यथार्थ अर्थ हम अपने अङ्क ९ । १० । ११ में देचुके हैं महन्त जी को तो पुनरुक्ति का रोग होगया है ॥

५८—पृष्ठ २७ पं० २६ । २८ में जो " कर्मचोदनाब्राह्मणानि । ब्राह्मण-शेषोऽर्थवादः । ये दो आपस्तम्ब सूत्र लिखे हैं सो ब्राह्मण और अर्थवाद के स्वरूप दिखाये हैं इस से इन को वेदत्व क्या सिद्ध हुआ ? कुछ नहीं ॥

५९—अङ्क (६३) में जो सायणकृत ऋग्वेदभाष्यभूमिका का प्रमाण देते हैं कि "अतएवाभवद्वेदस्त्रयीति व्यपदेशभाक्" इसी कारण अर्थात् मन्त्र, ब्राह्मण और अर्थवाद इन ३ भागों से वेद का नाम "त्रयी" पड़ा ॥ और इस की पुष्टि में अमरकोष का प्रमाण भी पृष्ठ २८ पं० १४ में लिखते हैं कि "इति वेदास्त्रयस्त्रयी"

उत्तर—धन्य हो ! आप अपने साथ सायण को भी क्यों अज्ञानसागर में घसीटते हैं आप ने जो सायण की पुष्टि अमरकोष के वाक्य से की वह उन लोगों के भुलाने निमित्त है जिन्हों ने अमरकोष का दर्शन नहीं किया । परन्तु आप दिनधौली पण्डितों की आखों में धूल न फेंकिये । महन्त जी ! आप ही कहदें कि आप को यह विदित न था कि अमरकोष के शब्दादि वर्ग श्लोक ३ में ऐसा पाठ है कि (स्त्रियामृक्सामयजुषी इति वेदास्त्रय स्त्रयी) अर्थात् ऋग्, साम और यजुः ये ३ वेद "त्रयी" कहाते हैं फिर आप जानबूझ कर "त्रयी" शब्द से मन्त्र, ब्राह्मण और अर्थवाद इन ३ तीन को मिला कर "त्रयी" का अर्थ सम्पूर्ण संसार के विरुद्ध अपने स्वार्थ के लिये क्यों करते हैं ॥

६०—फिर अङ्क (६४) में जो ८ ब्राह्मण प्रौढ, षड्विंश, साम, आर्षेय, दैवत' उपनिषद्., संहितोपनिषद्, और वंश ॥ लिखे हैं सो यह ब्राह्मणों की उन के ही मतानुसार संख्यामात्र हुई कुछ उन को वेदत्व की साधक नहीं ॥

यहां तक तो महन्त जी ब्राह्मण का वेदत्व सिद्ध न कर सके अब—

६१—अङ्क (६५) में लिखते हैं कि "आरण्यकग्रन्थ भी पूर्ण २ वेद ही हैं इन में कुछ सन्देह नहीं इस में मनुस्मृति का प्रमाण है। यथा—

सामध्वनावृग्यजुषी नाधीयीत कदाचन।
वेदस्याधीत्य वाप्यन्तमारण्यकमधीत्य च ॥ ४। १२३ ॥

महन्त जी कृत भावार्थ—(सामध्वनौ) सामवेदीय गान के पीछे ऋग् और यजुर्वेद इन को कभी न पढ़े" ॥

६२—वक्तव्य—धन्य हो ! (सामध्वनौ) का अर्थ "साम गान के पीछे" यह अद्भुत है ! विदित होता है कि महन्त जी अर्थ करने में बड़े निपुण हैं। महन्त जी ! इस का अर्थ तो सप्तमीविभक्ति के अनुसार यह होता है कि (सामध्वनौ) सामवेद की ध्वनि में (ऋग्यजुषीनाधीयीत) ऋग्, यजुः को न पढ़े। क्योंकि उन के स्वर सामवेद से नहीं मिलते ॥

६३—आगे पृष्ठ २९ पं० २१ में अन्वय करते हैं कि("वेदस्यान्त्यम् आरण्यकम् अधीत्य) वेद का अन्त जो आरण्यक तिस का अध्ययन कर के भी ऋग् यजुः को न पढ़े" ॥

यहां महन्त जी ने स्वार्थवश अविद्वानों को धोका देने के लिये मूल श्लोकस्थ अपि, वा और च इन तीन पदों को छोड़ दिया यदि इन को मिला लेते तब यह अन्वय होता कि (वेदस्य अन्तं कोर्थः—वेदान्तमपि वा आरण्यकं वा धीत्य ऋग्यजुषी नाधीयीत) वेद का अन्त अर्थात् वेदान्त को पढ़ के वा आरण्यक को पढ़ के ऋग् यजुः न पढ़े, किन्तु प्रथम ऋग् यजु, पढ़ कर फिर वेदान्त और आरण्यक पढ़ना चाहिये यह मनु का आशय है अर्थात् यह श्लोक प्राचीन कालिक आर्य्यशिक्षाविभाग (यूनिवर्सिटी) की व्यवस्था का है आर्य्ययूनिवर्सिटी की पाठ्य पुस्तकों का पाठक्रम किस प्रकार चाहिये कि प्रथम ऋग्, यजुर्वेद पढ़ कर फिर वेदान्त और आरण्यक पढ़ना चाहिये सो इस से आरण्यक का वेदत्व सिद्ध नहीं हो सकता ॥

६४—पूर्व पृष्ठ (२४) में तो "त्रयी" पद का संसार भर के विरुद्ध यह अर्थ किया कि मन्त्र, ब्राह्मण, अर्थवाद ये ३ भाग वेद के हैं अतएव वेदों का नाम "त्रयी" है अब पृष्ठ ३० पं० ११ में अपने कथन के विरुद्ध, वेदों के चार भाग गिनाते हैं कि मन्त्र, ब्राह्मण, अर्थवाद, और आरण्यक, सो कितनी बड़ी भूल है ॥

६५—अब उपनिषदों को वेद सिद्ध करने का साहस कर के अङ्क (६६) में लिखते हैं कि—"ऋगयनादिभ्यः । ४ । ३ । ७३ । और, वेतनादिभ्यो जीवति ४ । ४ । १२ ॥ इन पाणिनि सूत्रों के गणपाठ में और "जीविकोपनिषदावौपम्ये" इस मूल सूत्र में उपनिषद् शब्द आया है इतने से उपनिषदों को भी सनातन वेदत्व सिद्ध हुआ ॥

वाह ! पाण्डित्य !!! इन सूत्रों में उपनिषद् शब्द मात्र आने से वेदत्व सिद्ध हुआ तब तो पाणिनि सूत्रों में जितने शब्द आये हैं वे सब वेद ही के नाम हुये—यह अच्छी सिद्धि हुई यूं तो महात्मा जी आप अकेले उपनिषदों को क्यों वेदत्व सिद्ध करने में परिश्रम करते हैं । "सिद्धंतुनित्यशब्दत्वात् नित्याःशब्दाः" इत्यादि महाभाष्य से सब शब्दों की सनातनता तो सिद्ध ही है, फिर तो जो कुछ शब्दमात्र है सब ही वेद सनातन हो जायगा—एक बार ही नानिमट जाइये । फिर तो इतना ग्रन्थ बनाना व्यर्थ था एक ही महाभाष्य के प्रमाण से सब शब्द मात्र को वेदत्व सिद्ध हो जाता ॥

६६—ईशोपनिषद् में यदि १७ मन्त्र यजुर्वेद के ४० अध्याय के अनुसार ही माने जांय तब तो भिन्नता ही नहीं फिर संहिता से भिन्न उपनिषद् का वेदत्व क्या सिद्ध हुआ और यदि शङ्करभाष्यादि के अनुसार १८ मन्त्र माने तब भेद स्वयं सिद्ध है । तब वेदत्व कहां रहा ?

६७—फिर जो पृष्ठ ३१ पं० ५ में निरुक्त लिखा है कि—"इत्युपनिषद्वर्णो भवति," सो यहां वेद के ब्रह्मज्ञानविषयक मन्त्र को उपनिषद् कर के कहा है किसी ग्रन्थ विशेष को नहीं क्योंकि—"द्वासुपर्णा०" यह प्रतीक जो महन्त जी ने लिखा है वह ऋग्संहिता २ । २ । १८ । १ । का है किसी उपनिषद् ग्रन्थ का नहीं । अतएव उपनिषद् ग्रन्थों को वेदत्व नहीं है ॥

६८—यदि कहो कि वेदों के ज्ञान, उपासना और कर्म ये ३ काण्ड हैं सो उपनिषद् ग्रन्थों के विना वेद का ज्ञानकाण्ड कैसे पूरा होगा इस का उत्तर यह है कि—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ यजुः अध्याय ४० मं० ५

इत्यादि मूल वेद में ज्ञानकाण्ड का वर्णन है उसीका व्याख्यानरूप उपनिषद् तथा अन्य शारीरक सूत्रादि हैं । अतएव उपनिषद् वेद नहीं ॥

६९—फिर पृष्ठ ३२ पं० २ में जो—छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते । ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥१॥ शिक्षाघ्राणन्तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ॥ इस प्रमाण से वेद के छः अङ्ग गिनते हैं कि छन्दःशास्त्र वेद के चरण, कल्प–हाथ, ज्योतिष–आंख, निरुक्त–कर्ण, शिक्षा–नाक, मुख–व्याकरण, है इस से भी क्या व्याकरणादि छः अङ्ग वेद हो सक्ते हैं कदापि नहीं । क्योंकि ये वेद के अङ्ग अर्थात् वेदार्थ के ज्ञान में सहायक हैं न कि साक्षात् वेद ॥

७०–अङ्क (६९) में जो वेदों के उपवेदादि की गणना की है वह भी अप्रामाणिक है क्योंकि उस से उपवेद वेद नहीं हो सक्ते ॥

७१–यदि कहो कि वेदों के उपवेदादि तो सब गिनाये परन्तु उपनिषद्, ब्राह्मण, कल्प, आरण्यक आदि की गणना नहीं की अतएव ये सब वेद ही हैं ॥

उत्तर–यूं तो जिस २ की गणना न हो वह २ वेद रहा ! इससे तो अगणित शब्द समुदाय वेद ही ठहरा । और ब्राह्मणादि की गणना नहीं की यह कहना भी परस्परविरुद्ध है क्योंकि जिस प्रकार ४ वेदों के ४ उपवेद हैं यह आपने ही गिनाया वैसे ही पृष्ठ २८ में सामवेद के ८ ब्राह्मण भी आप ने ही स्वयं गिनाये हैं फिर आप का लिखना परस्परविरुद्ध और मिथ्या भी हुआ ॥

७२–आप के अङ्क (७०) का उत्तर अपने (४९) में दे चुके हैं ।

इति ॥

विज्ञापन ॥

संस्कृत भाषा प्रथमं पुस्तकम् (संस्कृतग्रेमेटिकलप्राइमर, अपने आप संस्कृत सीखिये ।

प्रथमभाग	)॥।	८००० कापी बिक चुकी हैं
तथा द्वितीयभाग	-)।	
तथा तृतीयभाग	≡)	

भजनेन्दु -) शास्त्रार्थ विष्णुगढ़ -)॥ कामिनीकल्पद्रुम ॥) मातृशिक्षा ।≈) (स्त्रियों को उपयोगी हैं) ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपरागे प्रथमोंऽशः -)॥ द्वितीयोंऽशः)॥। इस के अतिरिक्त पं० भीमसेन शर्म्मा जी की समस्त पुस्तकें मेरे पास मिलती हैं और कमीशन उन पर भी मिलता है ॥

कमीशन—४) में ५) की पुस्तकें । ७) में १०) की । २०) में ३०) की । ५०) में १००) की पुस्तकें मिलेंगी । इति ॥

पता—पं० तुलसीराम वा छुट्टनलाल स्वामी

परीक्षितगढ़ ज़िला, मेरठ

स्वामी औषधालय ॥

१—ज्वरघ्नभस्म । एक महात्मा साधु की बताई । हमने हज़ारों रोगियों पर आजमाई है । अद्वितीय दवा है । पुराने हड्डी तक के ज्वर को नाश करती है १०० में ९५ आराम होते हैं । जाड़ा ज्वर, नित्य का, तेजरिया, चातुर्थिकादि नये पुराने सब ज्वरों में लाभदायक है । धातु को पुष्टिकारक, बलकारक है मूल्य फी तोला १)

२—दद्रुघ्न । कैसा ही नया पुराणा दाद क्यों न हो ३ दिन में पता भी न पावेगा । लगती बिलकुल नहीं एक डिब्बी ॥) आराम न करे तौ वापिस करदो ॥

३—दर्द उदर की दवा । किसी प्रकार का अजीर्णादि अन्य दर्द क्यों न हो । एक वार ही खाने से आराम होता है २०० खुराक १) में ॥

४—दाढ़ चीसने को दवा भी ऐसी ही गुणकारक है प्रति शीशी १)

५—खांसी की दवा १०८ गोली का दाम १) खांसी को ८ घड़ी में आराम लिखा है ॥

६—प्रसूत की दवा । हज़ारों वैद्य इसी को वर्त्तते हैं । १०० में ९९ को आराम होता है । फी बोतल २)

७—अन्य विषगर्भ नारायण तैलादि का हाल लिखने पर बतलाया जायगा—

८—देशीय साबुन की बिधि ५) गुरुदक्षिणा लेकर बतला देंगे । तिल की ओट पहाड़ है ॥

पं० छुट्टनलाल स्वामी

औषधालय परीक्षितगढ़—जिला मेरठ